

□□□□ □□□□

जनसत्ता 2 सतिंबर, 2014: सदा ही इनकी आवश्यकता रही है और आज तो ये अपरहार्य हैं। लेकिन हम इन्हीं के प्रति सबसे अधिक बेपरवाह हैं। ऐसा इसलिए है कि आज हम पर 'बाजार' का दबाव है और उससे बचना मुश्किल है। उपाय कही बचता है कि हम अपनी जीवनशैली को बदलें और इसके लिए हमारे पुरखों ने कसौगात के रूप में जो साधन हमें दिया है, उसका स्मरण करें। समाज का कवर्ग 'जैन' इसे स्वीकार करता है, पर अंगीकार करते हुए वह रस्म-अदायगी भर का नरिवाह कर पाता है। यह सौगात है- 'पर्यूषण पर्व या संवत्सरी'। हमारे जनि पुरखों ने यह सौगात दी, वे भगवान महावीर हैं। महावीर तीर्थंकर हुए हैं। उनके पूर्ववर्ती तीर्थंकरों की ऐसी कोई परंपरा रही है, यह अज्ञात है। पर संयम, साधना और क्षमा की परंपरा उन पूर्ववर्तियों की भी रही है। ऐसे अनेक उल्लेख मिलते हैं। कलांतर में नरिवाण प्राप्त करने वाले सभी तीर्थंकरों ने सांसारिक ऐश्वर्य और भौतिक वैभव को छोड़ कर ही संयम और साधना के मार्ग को अंगीकार किया। उनकी साधना के वैभव ने उन्हें अपराजेय बना दिया था।

अपने उन पुरखों को आज हमने संकीर्णता के दायरे में कैद कर डाला है। वे अब सबकेन रह कर 'कुटेक' के हो गए हैं। कमहान परंपरा, जो जन-जन के लिए थी और आज भी हो सकती है, वह सकि है। पर कतिना अच्छा है कि नरिवाह करने की इस धारा (भले रस्म-अदायगी हो) में उसके नामलेवा तो वे कहलाते हैं। जिस तरह अनेक भाषा विलोपित हो चुकी है, अनेक खतरों के बाद भी जिस तरह हृदि का नाम है और चौदह सतिंबर 'हृदि दविस' का हमें स्मरण भी रहता है, इसीलिए सारी दुर्दशा के बाद भी 'हृदि' का अस्तित्व अच्छा-खासा बचा हुआ है, उसी तरह पर्यूषण पर्व या संवत्सरी, फिर अगला दिन क्षमायाचना पर्व या मैत्री दविस भी हजारों वर्षों से हमारी स्मृति में है। बजरा जैन ही सही। लाखों जन (जैन) इस महापर्व के आठ दिनों में यथासंभव संयम बरतते हैं। फिर आठवें दिन उपवास रखते हैं और अगले दिन हर जन से क्षमायाचना करते हैं। इस बार यह पर्व अगस्त के अंत में आया। आचार्यश्री तुलसी (अणुव्रत आंदोलन के प्रणेता) ने तो इस क्षमायाचना दविस को 'मैत्री दविस' का ही नाम दे दिया था। इस कबात से क्षमायाचना दविस का अर्थ व्यापकता में बदल गया था। फिर भी अगर यह परंपरा 'जैन' के दायरे में समिटी हुई है, तो यह हमारे लिए सोचने का मामला क्यों नहीं है? प्रगतशील समाज में आलोचना का अपना स्थान है, पर आलोचना मर्यादा में होनी चाहिए, यह सब जानते हैं। तो क्या सबसे पहले हमारी सरकार को ही प्रगतशीलता का परिचय नहीं देना चाहिए?

वनिमृता, उदारता और सहनशीलता हर कके जीवन के गुण होते हैं- यह सभी मानते हैं। फिर यह मानने में कोई गुरेज क्यों होना चाहिए कि इन गुणों के लिए जहां भी, जो भी तजवीज हमें मिले उसे अंगीकार किया जाय? इसके लिए प्रगतशीलता कहां आती आ रही है? अगर वह आती है, तो फिर यह दायरों में बंधे रहना क्यों न माना जाय? प्रगतशीलता का तकजा है कि वह संकीर्णताओं के दायरों को तो, उनका अतिक्रमण कर संवत्सरी या मैत्री दविस मात्र 'जैन' तक न समिट कर 'जन-जन' का आदर्श और वास्तविक आधार-सेतु बने। इसके लिए किसी पहल के रूप में हमारे प्रधानमंत्री और उनकी सरकार को पहल करनी चाहिए। अच्छी और स्वस्थ परंपराओं को जीवित रखना क्या सरकार का काम नहीं? संयम और क्षमा जन-जन के स्वभाव का अंग बने और ऐसी जीवनशैली का विकास हो, जो 'बाजार' से संचालित न होकर हमारे अपने स्वभाव से चालित हो। तब 'बाजार' पर भी प्रकरांतर से नयित्रण स्थापित होगा। तब संयम के मायने भी व्यापक हो जायगे। यह केवल भौतिक संसाधनों तक सीमित न रह कर प्राणी और व्यवहार में भी झलकेगा। इसके बाद क्षमा, वनिमृता, सहनशीलता और उदारता अपने आप आ जायगे।

हमारे शिक्षा संस्थानों से इसकी शुरुआत सरलता से हो सकती है। कसमय में ऋषियों के आश्रम ही 'शिक्षण-शाला' हुआ करते थे। वहां नामांकित शिक्षार्थियों की दैनिक चर्या में संयम और साधना का प्रमुख स्थान था। 'गला-कट' शिक्षा प्रबंधन के इस दौर में भी हमारी वही परंपरा अपना स्थान ग्रहण करे, तो बेहतर रहे। आज शिक्षा प्रमुख रूप से शासन के हाथों में है और शासन के लिए ऐसी व्यवस्था नरिमिति करना आसान है। हमारी प्रारंभिक शिक्षण शाला साधना और शिक्षा के ऐसे केंद्र बन जाय, तो जिस नालंदा या तक्षशिला की परंपरा से दुनिया प्रभावित है और जिसे फिर से साकर करने की बातें होने लगी है, सही अर्थों में उसे साकर किया जा सकता है।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- <https://www.facebook.com/Jansatta>

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- <https://twitter.com/Jansatta>